चतुर्विध संघ-प्रस्तराकंन

श्री शैलेन्द्रकुमार रस्तोगी

मुनि, आर्यिका, श्रावक और श्राविका, इनके समुदाय को जैन संघ कहते हैं। मुनि और आर्यिका गृहत्यागी वर्ग है। श्रावक तथा श्राविका गृही वर्ग है। जैन संघ में ये दोनों वर्ग बराबर रहते हैं। जब ये वर्ग नहीं रहेंगे तो जैनसंघ भी नहीं रहेगा और जब जैनसंघ नहीं रहेगा तब जैन धर्म भी न रहेगा।[1]

अस्तु, मथुरा की ई० पू० से ईस्वी सन् की ब्राह्मणधर्म की, यथा, विष्णु, शिवादि की प्रतिमाओं की चरण-चौकी बिल्कुल सादा मिलती हैं। किन्तु, बुद्ध की दो[2] प्रतिमाओं पर मूलमूर्ति के नीचे आधार की पट्टी पर धर्मचक्र के आस-पास मालाधारी गृहस्थ जो आभूषणादि से वेष्टित हैं, उन्हें अलंकरण के रूप में बनाया हुआ पाते हैं। ये अलंकरण हैं, ऐसा बौद्धकला एवं धर्म के मर्मज्ञ विद्वान् प्रो० चरणदास चटर्जी ने इन पंक्तियों के लेखक को एक भेंट में बतलाया था।[3] दूसरे, बुद्ध-प्रतिमा के नीचे मध्य में बोधिसत्त्व तथा उनके दाँए बाँए स्त्रियां तथा पुरुष गृहस्थ मालाएं लिये खड़े हैं। इन दो निदर्शनों को छोड़कर यहाँ के संग्रह में एक स्वतंत्र पट्ट[4] है जिस पर माला लिये, लम्बा कोट पहने पाँच पुरुष खड़े हैं। ऊपर पत्रावलि, नीचे स्तम्भों के मध्य माला व पुष्प लिये पाँच पुरुष आवक्ष और दायीं तरफ गरुड़ पक्षी व नीचे खिला कमल बना है। एक दूसरा छोटा सिरदल,[5] जिस पर तीन श्रावक व बायीं तरफ के शेर का मुखमात्र ही शेष है।[6]

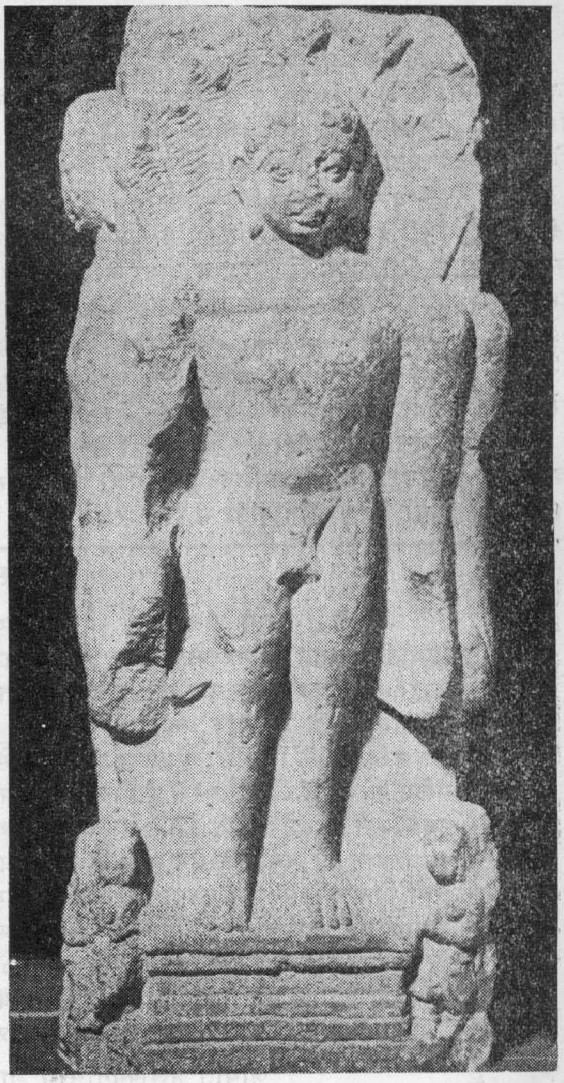

जे-२४३ : सर्वतोभद्र-प्रतिमा के चरणों के दोनों ओर श्रावक एवं श्राविका (कंकाली टीला, मथुरा)

१. जैन धर्म, पं० कैलासचन्द्र शास्त्री, वाराणसी, पृ० २८५।
२. रा० सं० सं०, बी० १ व ६६. १८३।
३. मैंने प्रो० सी० डी० चटर्जी से भेंट दि० ८.१२.८१ को उनके आवास 'सप्तपर्णी' में की। उन्होंने बताया कि खुद्दकपाठ में ऐसा वर्णन है कि भिक्षु मालादि नहीं ले सकता है। दीघनिकाय में बुद्ध ने स्वयं साधुओं को मालादि से दूर रहने को कहा है।
४. रा० सं० सं०, बी०—१४७।
५. जे—५४
६. जें—३५४ व जे—६०९।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

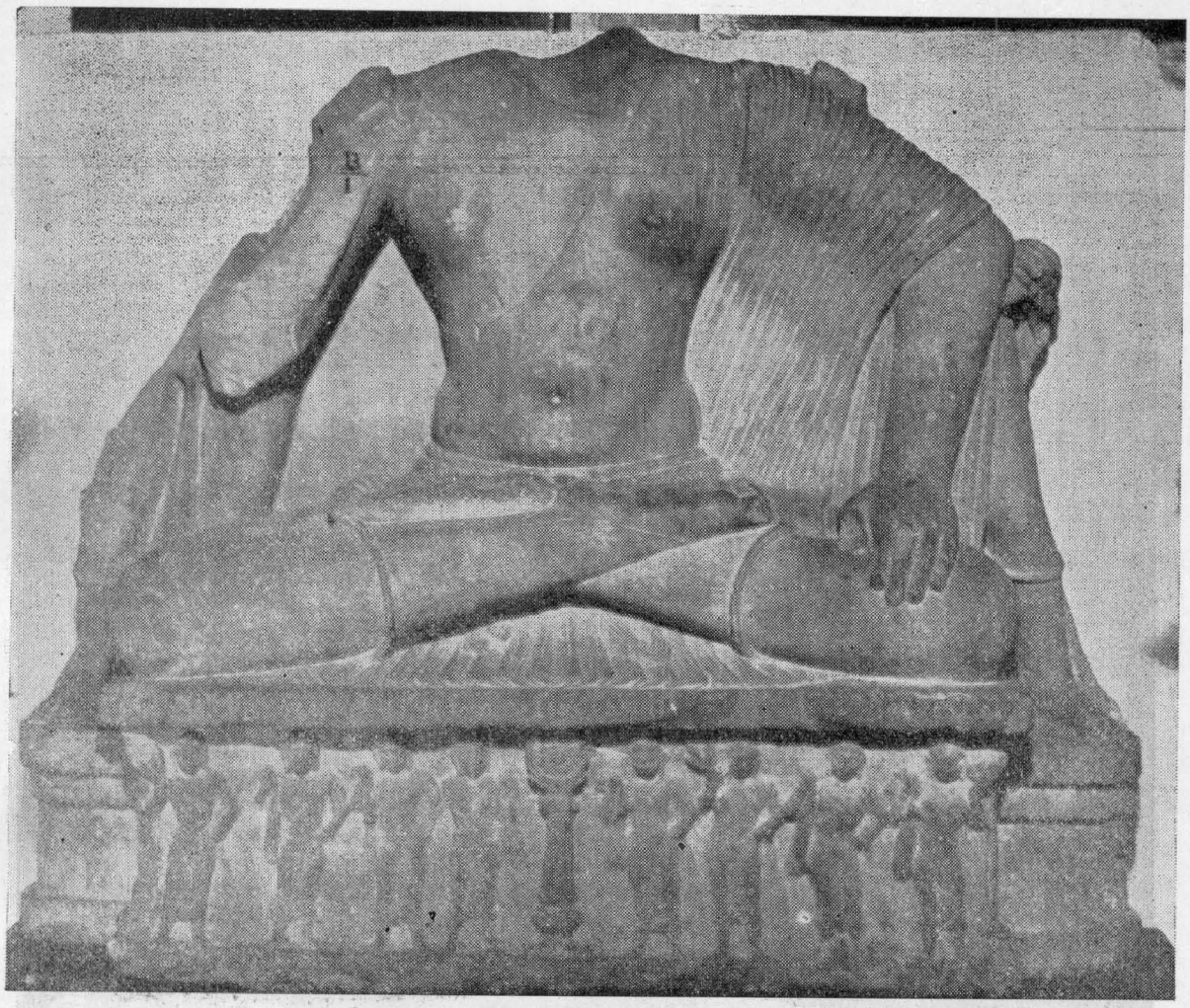

बी-१ : जैन शैली से प्रभावित बुद्ध-प्रतिमा की चरण-चौकी—मध्यस्थित धर्मचक्र के बायीं ओर दो स्त्रियां तथा दो पुरुष, स्त्रियों में प्रथम माला व द्वितीय कमलपुष्प लिए हुए हैं तथा दायीं ओर माला लिए हुए प्रथम तथा पीछी (?) जैसी वस्तु लिए हुए अंतिम मूर्ति है (कुषाण काल, मथुरा)

उपरोक्त निदर्शनों की अल्पता हमें मथुरा की जैन प्रतिमाओं के सिंहासनों पर बहुलता से दृष्टिगोचर होती है।

जिस समय जैन प्रतिमाओं का ई० पू० से प्रारंभ पाते हैं उसी समय पीछी, कमण्डल लिए नग्न साधु व दूसरी खंडित मूर्ति जिसका वस्त्र खण्ड मात्र ही शेष है, दीख पड़ते हैं।[1] यह वही सर्व प्राचीन स्तम्भ है जिस पर भगवान् ऋषभनाथ के वैराग्य का विलेखन है। इस पट्ट के अतिरिक्त एक आयाग पट्ट, जिसके मध्य में चौकी पर पार्श्वनाथ, जिन पर सातफण बने हैं, विराजमान हैं और इन्हीं की वंदना में दो जिनकल्पी साधु नमस्कार-मुद्रा में खड़े हैं। ये दोनों कला-रत्न ई० पू० के हैं। क्योंकि तीर्थंकर के बैठने व अन्य आकृतियों की बनावट के आधार पर इन्हें शुङ्गकाल का माना गया है।

(आयाग-पट)

इन ईसा-पूर्व के दो निदर्शनों के अतिरिक्त राज्य-संग्रहालय, लखनऊ में कंकाली टीला मथुरा की कुल ९६ प्रतिमाएँ हैं जिन पर जैन धर्म के चतुर्विध संघ का बहुलता से प्रस्तरांकन किया गया है। इनमें ४५ बैठी, ५ खड़ी, ६ सर्वतोभद्र, २ ऐसी प्रतिमाएं जिनपर शेरों का रेखांकन व लेख,[2] ११ ऐसी घिसी हुई प्रतिमाएँ जिनके नीचे संघ बनाया गया होगा किन्तु इस समय आभासमात्र ही शेष है। एकमात्र प्रतिमा, जिस पर लेख नहीं है।[3]

१. जे—२५३, जैन स्तूप एण्ड एण्टीक्विटी, पृ० १७, प्लेट X, स्मिथ, बी० सी०।
२. जे—२१ व जे—७१
३. जे—१०८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

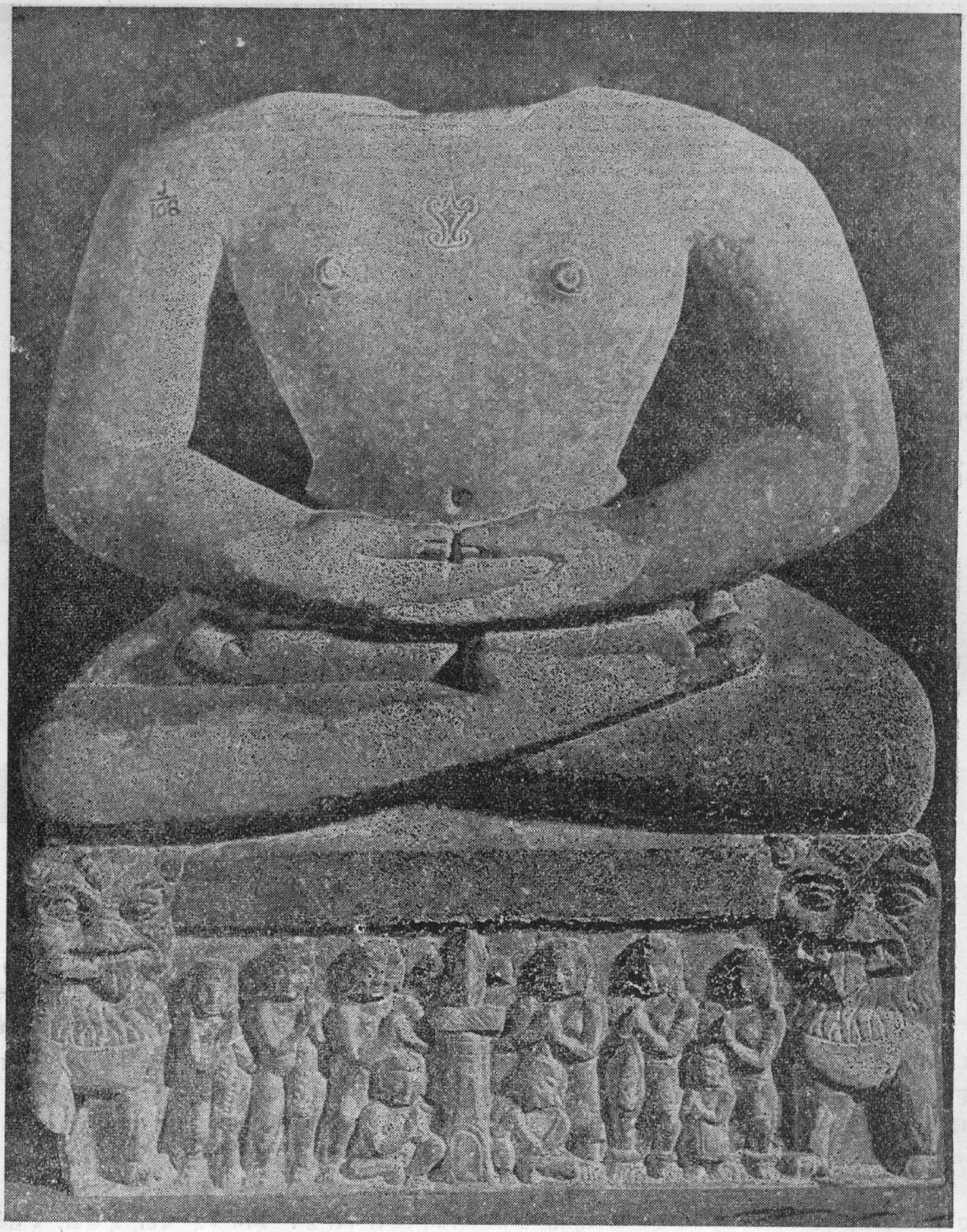

जे-१०८ : चतुर्विध संघ, लेखरहित एकमात्र प्रतिमा (कुषाण काल, कंकाली टीला, मथुरा)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

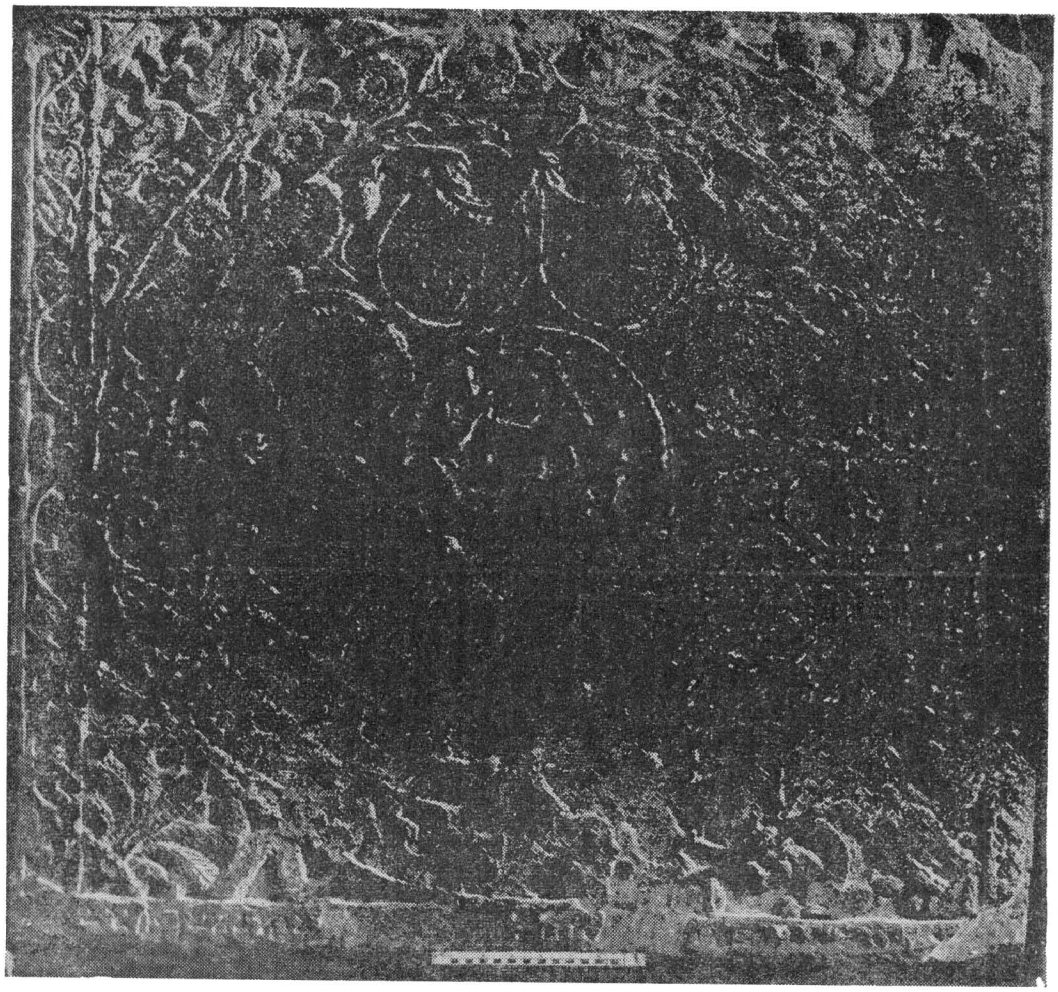

जे-२५३ : दो जिनकल्पी साधु (लगभग प्रथम शती ई० पू०, कंकाली टीला, मथुरा)

अभिलिखित और चतुर्विध संघ के विलेखन से युत जैन कला-रत्न कनिष्क सं०—४ से वसुदेव सं० ९८ तक के हैं। हुविष्क वर्ष ५८ व ६० व ४८ विशेष उल्लेखनीय हैं। यहाँ पर यह स्पष्ट द्रष्टव्य है कि मात्र मूर्ति की शैली के अलावा लिपि भी ध्यान देने योग्य है क्योंकि एक प्रतिमा[1] जो सं०३१ की है किन्तु अन्य मूर्तियों जिनपर बाद का सं० पाते हैं, से भिन्न है बाद वाली प्राचीन है और जे-१५ बाद की अर्थात् ढलते कुषाण काल की है शेष कुषाण-काल की हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि सर्वत्र एक ही शक संवत् का प्रयोग नहीं हुआ है कोई अन्य संवत् भी मथुरा में प्रारंभ या बाद में था उसे भी अपनाया गया है।[2] तीन प्रतिमाएँ ऐसी हैं जिन पर मात्र गृहस्थ ही धर्मचक्र के बने हैं। इन्ही में सम्भवनाथ की प्रतिमा है जिसके मध्य में त्रिरत्न पर धर्मचक्र तथा इसके बायीं ओर वस्त्राभूषणों से समलंकृत माला लिये एक श्राविका और दायीं ओर श्रावक, जो बायें कंधे पर उत्तरीय डाले खड़ा है। दोनों ही ने दाएँ हाथों में पुष्प ले रखा है। यहाँ पर चक्र रक्षक दो यक्ष[3] भी नहीं बनाये गए हैं। दो यक्ष धर्मचक्र के आसपास बैठे रहते हैं तीन स्थलों पर धर्मचक्र मस्तक पर रखे बने हैं और एक है।[4]

---

१. जे —१५

२. म्यु० बुलेटिन न० ९, पृ० ४६, श्रीवास्तव, बी० एन०, सम इन्ट्रेस्टिंग जैन स्कल्पचर इन स्टेट म्यु० लखनऊ।

३. महा० जय० स्मा० १९८०, जयपुर, ये तुंदिले, रस्तोगी, शैलेन्द्र कुमार।

४. जे-११, जे-६० व जे-६८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

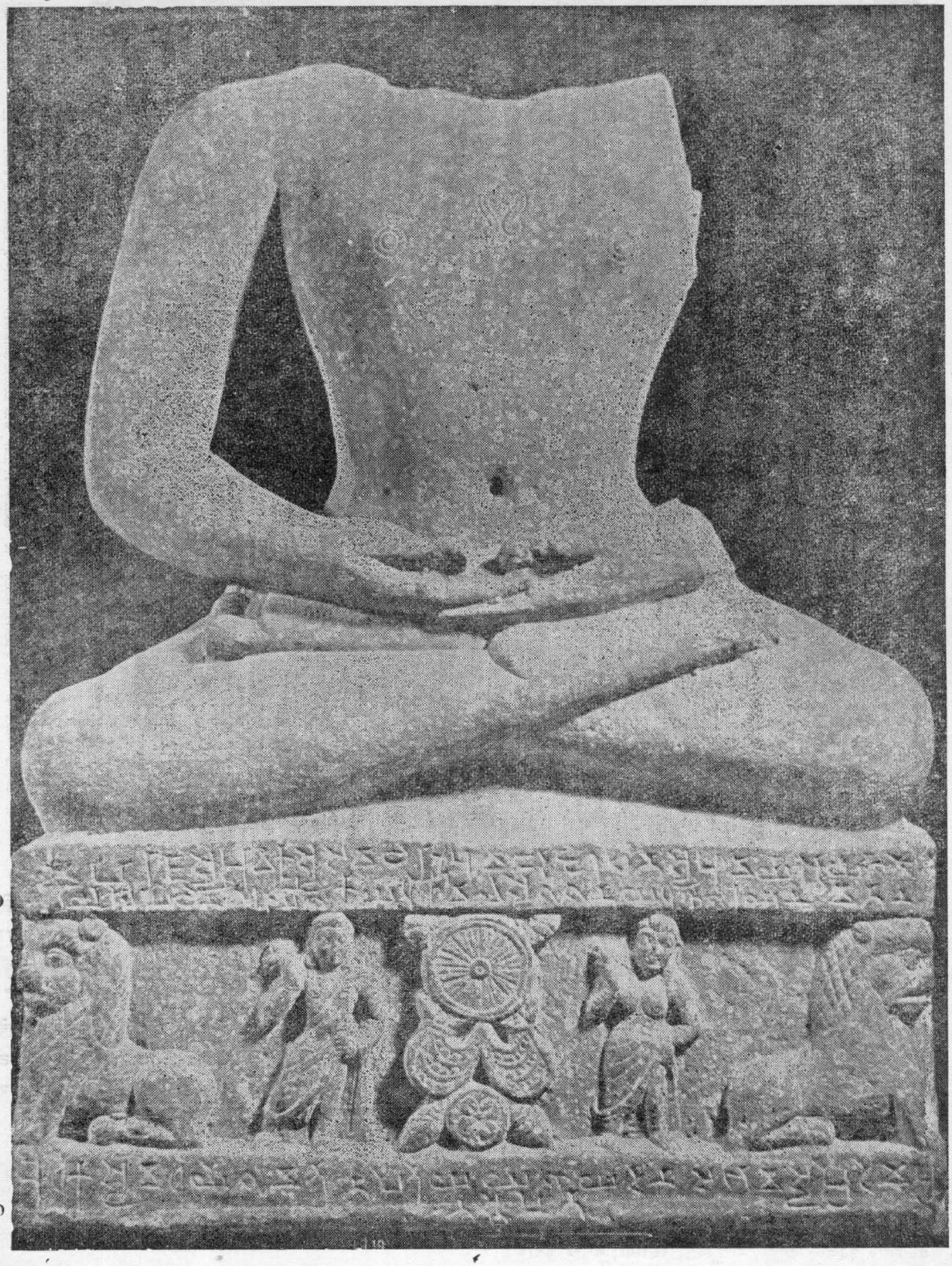

जे-१६ : श्रावक-श्राविका से युक्त चरण-चौकी पर 'सम्भवस्य प्रतिमा' से अभिलिखित मूर्ति (कंकाली टीला, मथुरा)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

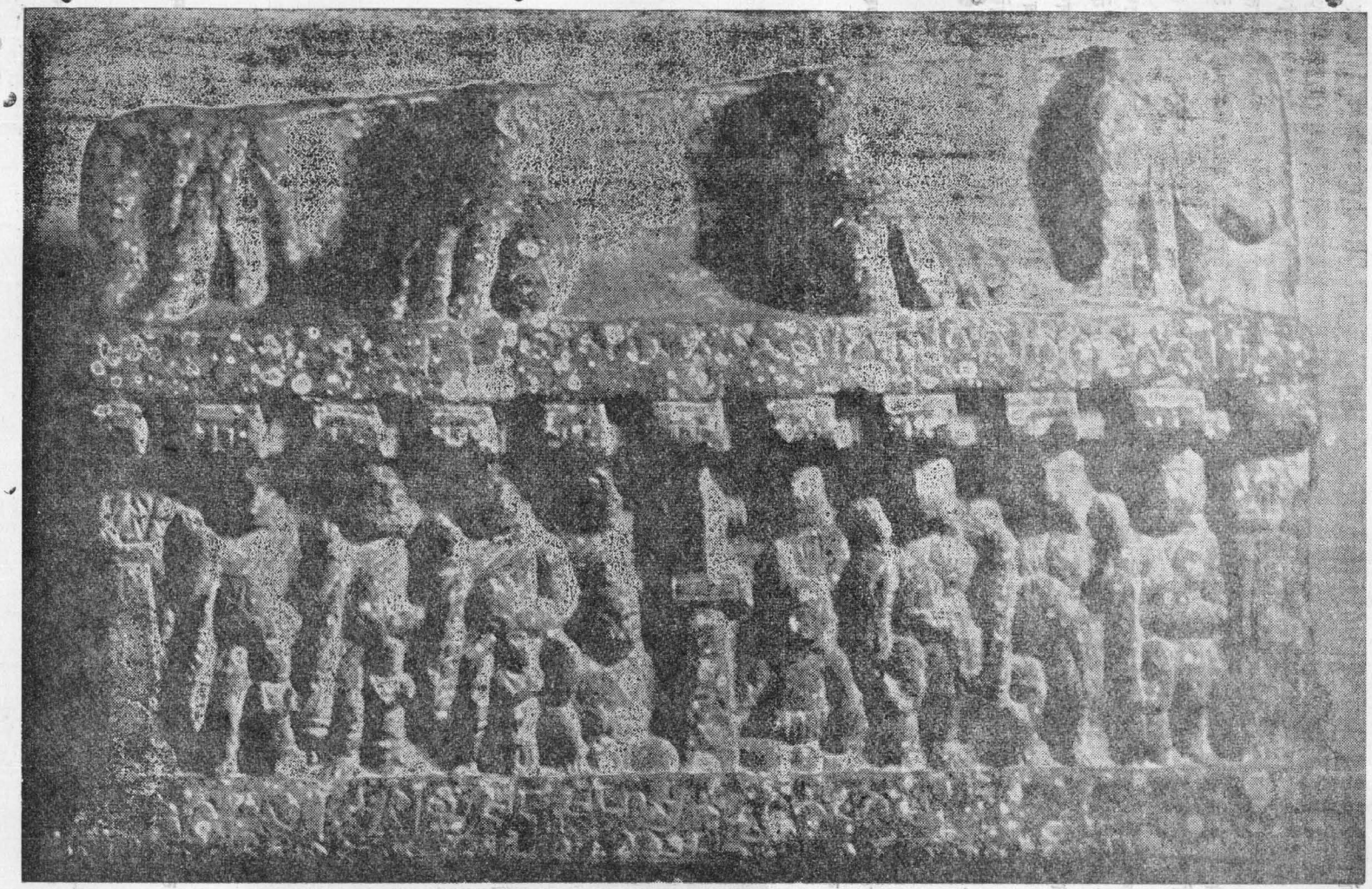

जे-९ : कायोत्सर्ग मुद्रा वाली वर्द्धमान-प्रतिमा की चौकी—मध्य-स्थित धर्मचक्र के दोनों ओर चक-एक चंवर सहित बैठे हुए तुंदिल यज्ञ तथा खड़े हुए आभूषित उपासक-उपासिकाओं के साथ तीन-तीन बालक। इस पर सिंहों व अर्द्धफलकों का नितान्त अभाव है (कुषाण काल सं० २०, कंकाली टीला, मथुरा)

Jain Education International
For Private & Personal Use Only
www.jainelibrary.org

कायोत्सर्ग प्रतिमाओं पर बायीं ओर स्त्री साध्वी जो पुस्तक व पीछी लिये दूसरी ओर साधु वस्त्रखण्ड लिये खड़ा बना है। ऐसा लगता है कि बायीं ओर यक्षी व दायें यक्ष बनाये जाने की जो धारा मध्यकाल में स्थिर हुई उसका जन्म सं० ९ अर्थात् ७८+९=८७ ई० में हो चुका था। खड़ी और बैठी प्रतिमाओं में मुख्य अन्तर यह है कि प्रथम कोटि की प्रतिमा पर सिंहांकन अनिवार्य है जब कि दूसरी में खम्भे। एक प्रतिमा पर जिसे सं० ७९ में बनाया गया था, दायीं ओर अर्द्धचेलक साधु, तत्पश्चात् त्रिरत्न पर धर्मचक्र व बायीं ओर तीन स्त्रियाँ, जो हाथों में कमल लिए लम्बी धोती, कुण्डल व चूरी पहने बनी हैं श्राविकाएँ हैं। ये काफी लम्बी हैं, ऐसा लगता है कि विदेशी है।

आर्यिकाएँ ज्ञान के लिए पुस्तक व शुद्धि के लिए पीछी लिये आभूषण रहित बनायी गई हैं। इन्हीं के साथ श्राविकाएँ कई ढंग से साड़ी बांधे, माथे पर टीका पहने, कान व हाथ तथा पैरों में आभूषणों से मंडित रूपायित की गई हैं। ये दायें हाथ से माला बायें हाथ से साड़ी का छोर, कहीं हाथ कमर, पर रखे, क्वचित पुष्प लिए पायी जाती हैं। इनके साथ छोटे बालक हाथ जोड़े भी दीख जाते हैं। कहीं कहीं पर गौण स्थान पर हाथ जोड़े या पुष्पथाल लिए जो दासी हो सकती है, बनाई गई है। धर्मचक्र के दायीं ओर वस्त्रखण्ड (अग्गोयर) व पीछी लिए साधु तदुपरान्त बांये कंधे पर उत्तरीय या अधोवस्त्र का आधा छोर डाले दायें हाथ में माला पकड़े श्रावक या गृही बने हैं। इनके साथ भी छोटे बालक वंदना की मुद्रा में पाये जाते हैं। सबसे किनारे पर दास हाथ जोड़े बने पाये जाते हैं।

अर्द्धचेलक—अग्गोयर—अर्द्धफालक[1] के अन्य उल्लेखनीय निदर्शन कण्हश्रमण, कछौटे[2] व एक प्रतिमाखण्ड[3] पर साधु वस्त्रखण्ड लिए है, नग्न है व हवा में उड़ता हुआ बना है सामने छत्र व मालाधारी विद्याधर बना है।

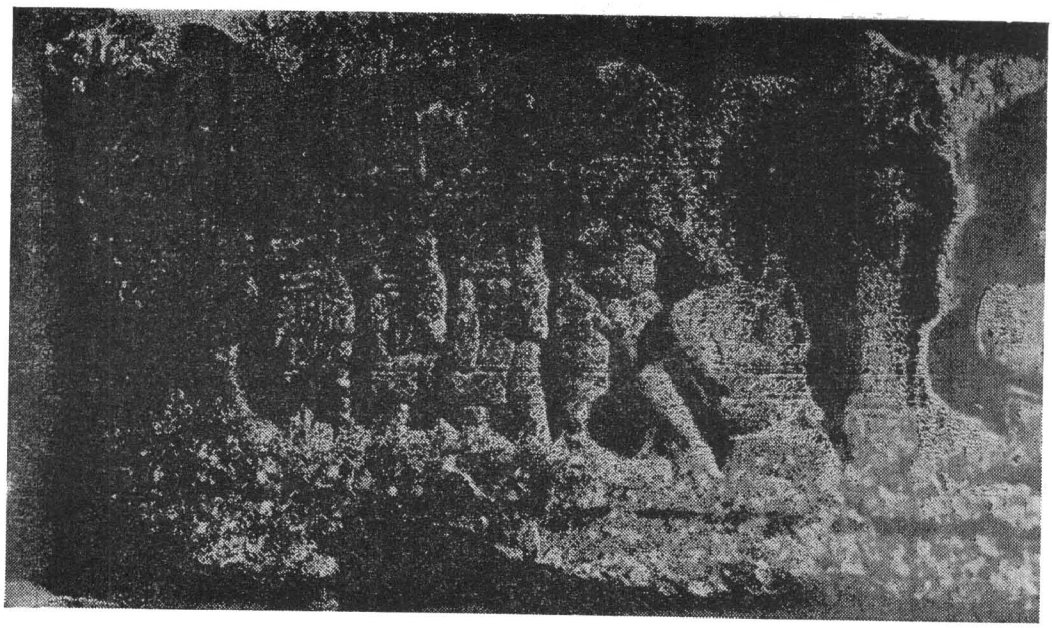

जे-३० : तीन श्रावकों से अनुसरित वन्दन मुद्रा में जिनकल्प साधु (वसुदेव सं० ८० उत्कीर्ण है, कंकाली टीला, मथुरा)

१. जे—६२३, जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज, पृ० २१३; ले० जैन, जगदीश चन्द्र, जैन धर्म, पृ० ४१९, ले० शास्त्री, कैलाश चन्द्र, वाराणसी, बम्बई ४।
२. बी— २०७।
३. जे—१०५।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

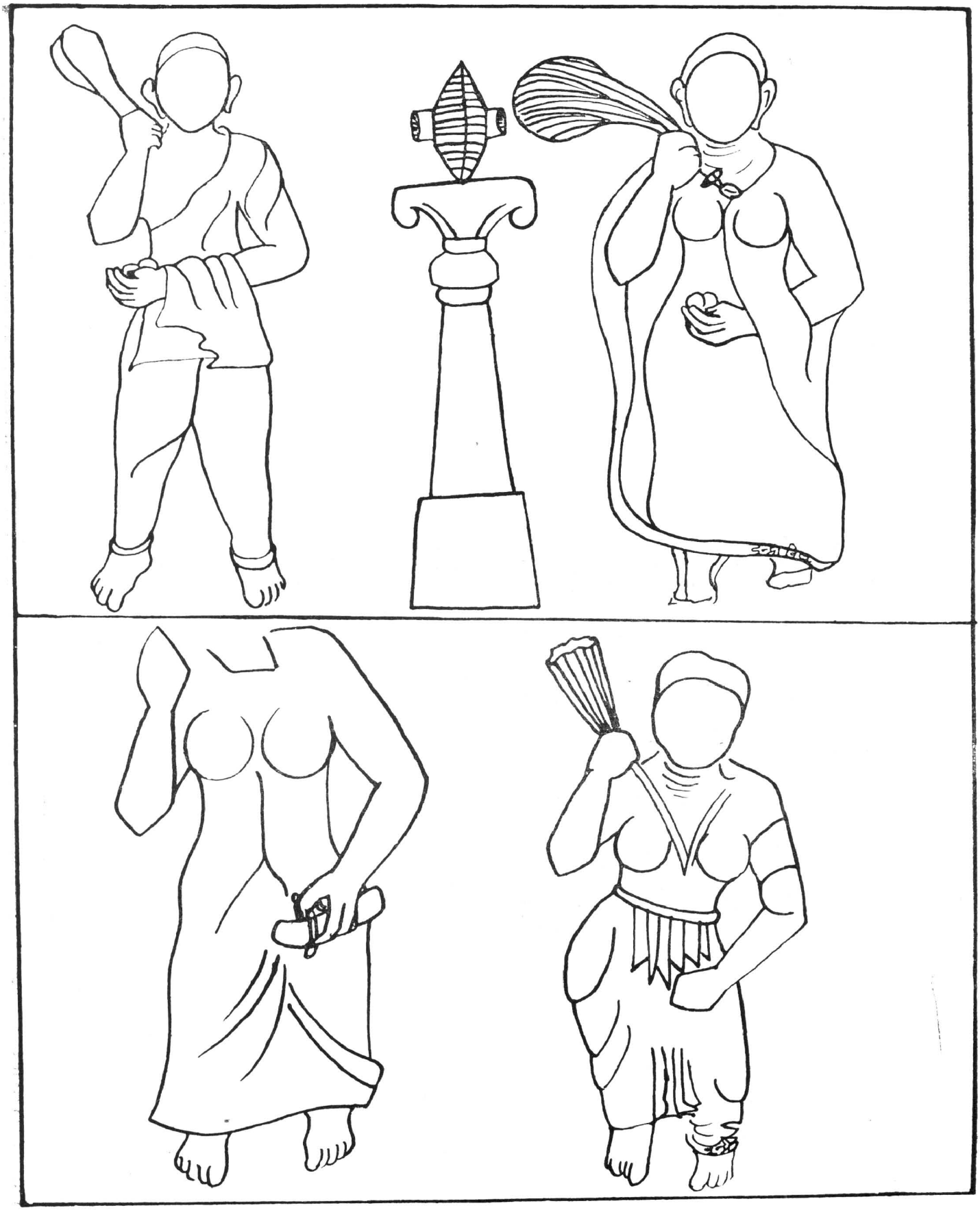

卐 रेखाचित्र 卐

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जे-६८६ : चरण-चौकी पर धर्मचक्र के दाएँ श्राविकाएँ एवं बाएँ श्रावक (कुषाणकाल, मथुराशैली, अहिच्छत्रा, रामनगर, उत्तर प्रदेश)

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जिन कल्पधारी साधु भी पुराशिल्प में प्राप्त हुए हैं।[1] तीन ऐसे उदाहरण हैं पूर्वोक्त आयागपट्ट वाले विवस्त्र साधुओं को छोड़कर, वसुदेव सं ८० की तीर्थंकर प्रतिमा की सिंहासन वेदी पर हाथ जोड़ विवस्त्र एक साधु खड़े हैं। इनके पीछे तीन गृहस्थ माला लिए खड़े हैं, तीनों के कंधे पर धोती है। यहाँ अर्द्धफालक का अभाव है। दूसरी ओर तीन स्त्रियाँ हाथ जोड़, चौथी कमल लिए हैं।[2] इसी प्रकार दूसरी प्रतिमा पर साध्वी है।[3] तीसरी पर विवस्त्र साधु एक हाथ में पीछी लिए खड़ा है।[4] एक प्रतिमा का टुकड़ा जिसपर दायीं ओर गृही, अर्द्धफालक व साध्वी मात्र ही है। शेष यह साध्वी पीछी व दूसरे हाथ में फल लिए है। इसके वस्त्र ध्यान देने योग्य हैं नीचे एक वस्त्र उसके उपर चादर सी ओढ़े है, जिसकी गाँठ गले के नीचे हैं भीतर दूसरा हाथ है।[5] प्रायः साध्वी एक साड़ी अथवा साड़ी पर लम्बा सिला कोट पहने बनाई गई है। जो कञ्चुक जैसा है।

अहिच्छत्रा की मात्र प्रतिमा जिस पर स्त्री वर्ग दाँये व पुरुष वर्ग बाँए बनाया गया, जो कलाकार का नया प्रयोग या भूल कही जा सकती है। एक सर्वतोभद्र प्रतिमा की चौकी पर सुन्दरता से चारों ओर वंदन मुद्रा में पुरुष-स्त्री, साधु-साध्वी बने हैं। यह संवत् ७४ की है जो उस पर खुदा है तथा अहिच्छत्रा से प्राप्त हुई है। किन्तु मथुरा के चित्तीदार लाल पत्थर की बनी है।

इस प्रकार अविच्छन्नरूप से ईसा की प्रथम व द्वितीय शती में चतुर्विध जैन संघ का पुराशिल्प में प्रभूत मात्रा में विलेखन पाते हैं। किन्तु गुप्तकाल में धर्मचक्र के आस-पास दो या तीन उपासक घुटनों के बल बैठे वन्दन-मुद्रा में बनाने की प्रथा मात्र ही प्रतिमाओं पर दीख पड़ती है।

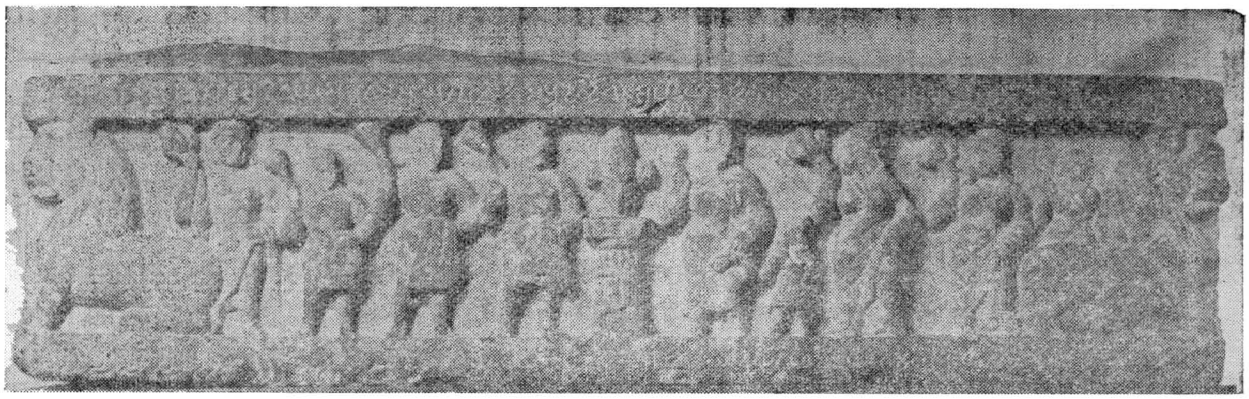

जे-२६ : आद्य तीर्थंकर ऋषभदेव की चरण-चौकी पर चतुर्विध-संघ (सम्राट् हुविष्क ६० ई०, कंकाली टीला, मथुरा)

१. जे—३० प्राचीन भार वेषभूषा, पृ० ३७ ले० डा० मोती चन्द्र।

२. जे—१०८

३. जे—२९

४. जे—३७ देखिए रेखाचित्र

५. जे—६८४।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इस माथुरी जैन चतुर्विध संघ के विषय में जो अभिमत मेरे पूज्य गुरुवर्य डा० ज्योतिप्रसाद जी जैन ने मुझसे कहा देखिए, वह कितना समीचीन प्रतीत होता है : मथुरा के जैन संघ का जो मूलतः दिगम्बराम्नाय था, लेकिन संघ-विभाजन के बाद भी जिसका सम्पर्क एक-दूसरे से अलग होती हुई दिगम्बर व श्वेताम्बर दोनों धाराओं के साथ बना और जो उन दोनों के बीच समन्वय करने के लिए प्रयत्नशील रहा, कालान्तर में दोनों ही धाराओं ने उसके साथ अपना संबंध जोड़ने का प्रयत्न भी किया, इस समन्वय के प्रयत्न स्वरूप ही ऐसा लगता है कि कम से कम ई० सन् की प्राथमिक दो शताब्दियों में मथुरा में तथाकथित अर्द्धफालक सम्प्रदाय के जैन मुनियों का अस्तित्व रहा जो न तो सर्वथा निर्वस्त्र दिगम्बर ही थे और न पश्चाद्वर्ती श्वेताम्बर साधुओं की भाँति सवस्त्र या सचेल ही थे। मात्र एक खण्ड-वस्त्र अपने मुड़े बाँए हाथ पर लटकाए अपनी प्रत्यक्ष नग्नता को आवृत करते हुए प्रतीत होते हैं। ऐसे मुनियों के अनेक अंकन मथुरा की तत्कालीन कला में उपलब्ध होते हैं।[1]

भारत के पौराणिक नगरों में मथुरा का गौरवशाली स्थान है। इस महानगर में भारत की सामासिक सभ्यता एवं संस्कृति का उदय तथा विकास हुआ था। भौगोलिक कारणों से तत्कालीन भारतीय समाज में मथुरा की विशेष स्थिति थी क्योंकि यह नगर एक ऐसे राजमार्ग पर स्थित था जो शताब्दियों से इस प्रदेश को दूर-दूर के कला-प्रेमियों, तक्षकों, पर्यटकों, वाणिज्यिक सार्थवाहों, महावाकांक्षी शासकों, धनलोलुप आक्रान्ताओं को आकर्षित करने के अतिरिक्त प्रमुख नगरों एवं अनेक मार्गों से परस्पर सम्बन्धित करता था। इन्हीं राजमार्गों पर विचरण करते हुए अनेकानेक सन्तों ने भारतीय जनमानस को धर्मोपदेश देते हुए इसी नगर को अपनी धार्मिक गतिविधियों एवं विद्या के प्रचार-प्रसार का केन्द्र बना लिया।

अनेक ऐतिहासिक, भौगोलिक एवं अन्य कारणों से इस प्रकार के सांस्कृतिक केन्द्र समय के साथ अपनी गरिमा को खो देते हैं। किन्तु इस प्रकार के नगरों की गौरव गाथाएं इतिहासज्ञों, दार्शनिकों एवं चिन्तकों को शोध की प्रेरणा देती रहती हैं।

मथुरा के सांस्कृतिक वैभव को प्रकाश में लाने के लिए सरस्वतीपुत्र सुप्रसिद्ध प्राच्यवेत्ता जनरल सर अलेक्जैंडर कनिंघम ने जो प्रयास किए थे, वे भारतीय स्थापत्य एवं मूर्तिकला के इतिहास में सदैव श्रद्धा की दृष्टि से देखे जायेंगे। उनकी महान् परम्परा को विकसित करते हुए डा० फुरहर के योगदान से तो जैन स्थापत्य एवं मूर्तिकला और उसके क्रमिक विकास को एक निश्चित आधार ही मिल गया है। अतः भारतवर्ष के कलाप्रेमी, इतिहासज्ञ एवं जैन धर्मानुयायी इन दोनों महान् आत्माओं के १८५३ से २८९६ तक के उत्खनन के प्रति श्रद्धा से नतमस्तक हैं।

उपरोक्त उत्खननों से प्राप्त कलानिधियों पर अभी अनेक दृष्टियों से शोध की अपेक्षा है। योजनाबद्ध एवं वैज्ञानिक ढंग से यदि मथुरा से प्राप्त जैन अवशेषों, कलानिधियों, स्तूपों, आयागपट्टों पर विशेष अध्ययन का प्रयास किया जाए तो भारतीय इतिहास के साथ-साथ जैनधर्म के अभ्युदय, विकास, संघभेद, मूर्तिकला और उसके क्रमिक विकास पर निश्चय ही प्रकाश पड़ेगा।

विद्वान् लेखक ने 'चतुर्विध संघ प्रस्तारांकन' में जो दृष्टि दी है, उस पर डा० भगवतशरण उपाध्याय जी का ध्यान गया था। उनके मतानुसार प्राचीन तीर्थंकर मूर्तियों में बी० ४ के आधार पर सामने दो सिंहों के बीच धर्मचक्र बना है, जिसके दोनों ओर उपासकों के दल हैं। कुषाणकालीन तीर्थंकर मूर्तियों पर इस प्रकार का प्रदर्शन एक साधारण दृश्य है।

आशा है, जैन समाज जागरूक होकर इस प्रकार की ऐतिहासिक धरोहरों के विश्लेषण को प्रोत्साहित कर जैन मूर्तिकला के इतिहास को वैज्ञानिक आधार देने में योग देगा।

☐ सम्पादक

विशेष आभार : लेख में प्रयुक्त सभी चित्र निदेशक, राज्य संग्रहालय, लखनऊ के सौजन्य से प्राप्त हुए हैं। चित्रों का छायांकन श्री राजेश सिन्हा एवं श्री रज्जन खाँ ने किया हैं।

१. डा० ज्योतिप्रसाद जैन ने दिसम्बर १०-१२.८० को अपनी भेंट वार्ता में उक्त अभिमत प्रकट किया था एतदर्थ लेखक उनका आभारी है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org